International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 11 Issue 02, February 2021
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

भारतीय राजनीति में राजनैतिक दलों के विकास एवं विपक्ष की भूमिका का विश्लेषण

- **Chandra Bhan Singh Sehrawat, Research Scholar, Himalayan Garhwal University, Uttrakhand**
- **Dr. Satyaveer Singh, Assistant Professor, Department of Political Science, Himalayan Garhwal University, Uttrakhand**

सार–

लोकतन्त्र एक ऐसी सजीव और गतिशील शासन व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक स्तर पर 'जनता' की हिस्सेदारी और साझेदारी अनिवार्य भी है और उपयोगी भी। वर्तमान समय लोकतन्त्र का समय है। इसे एक अच्छी शासन व्यवस्था माना जाता है। आधुनिक युग में लोकतन्त्र न केवल राजनैतिक पक्ष बल्कि, सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक तीनों पक्षों का वर्णन करता है। यह व्यक्तियों की समानता, सुरक्षा स्वतन्त्रता पर जोर देता है। अतः यह एक विस्तृत धारणा है। लोकतन्त्र व्यवस्था जनता की वह इच्छाशक्ति है जिसमें शासक की नियुक्ति राज्य में निवास करने वाली जनता की कम से कम बहुमत की सहमति के आधार पर होती है, जो जनता के कल्याण को ध्यान में रखते हुए शासन का संचालन है।

प्रस्तावना–

लोकतन्त्र को अंग्रेजी में 'डेमोक्रेसी' कहते है। डेमोक्रेसी दो शब्दों के मेल से बना है। ये दोनों शब्द यूनानी भाषा में 'डिमोस' तथा क्रेटिया शब्दों के येग से बना है, 'डिमो' का अर्थ जनता हेाता है और 'क्रेटिया' का अथ शासन होता है। इस तरह 'डेमोक्रेसी' या लोकतन्त्र का अर्थ जनता का शासन होता है। लोकतन्त्र की सबसे उपयुक्त अब्रहिम लिंकन ने दी उनके अनुसार ''लोकतन्त्र का अर्थ जनता का, जनता के लिए तथा जनता द्वारा शासन है।''

जोसेफ एवं शुम्पीटर' ने लोकतन्त्र को वस्तु स्थिति के अतिनिकट मानते हुए परिभाषित किया है, लोकतन्त्रीय प्रणाली अथवा राजनीतिक प्रश्नों के निर्णय करने की उस व्यवस्था का नाम है जिसमें कुछ व्यक्ति जनता की वोट के लिए परस्पर प्रतियोगिता द्वारा निर्णय करने की शक्ति प्राप्त कर लेते है।'' इस परिभाषा में लोकतन्त्र को चुनावों और दलबन्दी की ऐसी निकटता सुलभ हैं जो वर्तमान व्यवस्था के चरित्र को उद्भाषित करती है। विश्व राजनीति के शब्द कोष में लोकतन्त्र को इस प्रकार विवेचित किया है।

''लोकतन्त्र मूलतः 'स्वतन्त्रता के विचार' की राजनैतिक धरोहर है। यह या तो प्रत्यक्ष हो सकती है। उदाहरणार्थ 'समस्त जनता के द्वारा' अथवा अप्रत्यक्ष हो सकती है प्रतिनिधि संस्थाओं द्वारा। अरस्तु ने प्रजातंत्र को एक विकृत रूप में अनुभव किया है। जिसमें अधिकांश लोग शासन में भागदारी रखते है।''

लोकतन्त्र लक्ष्यहीन उद्धबोधन नहीं है यह स्वतन्त्रता, समानता और न्याय के विराट कवच में सुरक्षा के आश्वासन को पाती और खोजती है लोकतन्त्र का आदर्श रूप भले ही अप्रत्यक्ष अनुभव हो लेकिन उससे विरत होने या पृथक होने का कोई अर्थ नहीं होता। लोकतंत्र बहारी शक्ति के सहारे खडी व्यवस्था नहीं है बल्कि नैतिक एवं आत्मिक शक्ति के सहारे स्थापित होने ओर रहने की प्रयत्नशीलता का बोधात्मक संकलन है।

लोकतन्त्र की शक्ति मान्यताओं से परिपूर्ण है और प्राणवन्त भी। इन मान्यताओं को मनुष्य के स्वभाव से जोडे बिना किसी सही और पूर्ण परिणाम की अपेक्षा नहीं की

जा सकती। यह सही है कि फ्रायड आदि अनेक मनोवैज्ञानिकों ने प्रमाणित किया है मनुष्य सदैव बुद्धि से काम नहीं लेता और प्रायः अवचेतन से प्रेरित होता है। इसलिए क्षणिक आवेश और मिथ्यक प्रचार का सहज ही शिकार हो जाता है। इसका एक उदाहरण हिटलर और मुसोलनी जैसे तानाशाहों की सफलता से मिलता है। यह सफलता इस अपूर्णता को देने का प्रयास करती है जो लोकतन्त्र को संत्राशून्य कर देती है तथा अन्तः उस व्यक्ति और सत्ता को भी पराभूत कर देती है। इन सभी मान्यताओं के सहारे लोकतन्त्र को तभी सफलता सुलभ हो सकती है। निम्नलिखित संवेदनशीलताओं मान्यताओं को इनके साथ–साथ समाहित किया जाये।

- सद्भाव सहयोग और सहभागिता।
- संकल्पशीलता और निर्णयशीलता।
- सहनशीलता और सम्प्रेषण शीलता।
- साहसिकता और तादात्मयता।

लोकतन्त्र एक जीवन पद्धति भी है और शासन पद्धति भी। विभिन्न देशों में लोकतन्त्रीय शासन आदर्श लोकतन्त्र तक पहुंचने के लिए अपनी शासन पद्धति की संरचना अपनी भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक स्थितियों के सवोत्तम रूप में करते हैं। इसी के आधार पर लोकतन्त्र के रूप निर्मित और संगठित है। देश–काल परम्परा के भेद से इनमें विविधता होना बहुत स्वाभाविक है। लोकतन्त्र के विविध रूपों को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है। लोकतन्त्र के मुख्य रूप से दो प्रकार पाये जाते है।

- प्रत्यक्ष लोकतन्त्र
- अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र

प्रत्यक्ष लोकतन्त्र

प्रत्यक्ष लोकतन्त्र के अन्तर्गत छोटे छोटे राज्य की जनता एक स्थान पर एकत्रित होकर विधि, परिवर्तन आदि के विषय पर विचार विमर्श करती है। जनता के इस निर्णय को सरकार को मानना पडता है। आधुनिक युग में लोकतन्त्र का स्वरूप स्पष्ट है। किन्तु स्विट्रजरलैण्ड के कुछ क्षेत्रों में अब भी इस प्रकार के लोकतन्त्र देखने को मिलता है। प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की विधियाँ एवं रूप निम्न है।

1. लोकसभाएँ– प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की प्रथम विधि सभाएँ है इस तरह की पद्धति स्विटजरलैण्ड के कुछ ही कैण्टों में प्रचलित है इनके अनुसार वहाँ की जनता हर वर्ष आम सभा करती है और उसमें शासन कार्यो पर विचार कर विधि का निर्माण करती है। यही आम सभा विधि को लागू करने हेतु कार्यपालिका का चुनाव करती है यह साधारण सभा न्याय की स्थापना हेतु न्यायपालिका का निर्वाचन भी स्वयं ही करती है और अपने वार्षिक बजट भी पास करती है।

2. जनमत संग्रह– प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की दूसरी विधि जनमत संग्रह है। इस विधि को स्विटजरलैण्ड में देखा जाता है। इसका तात्पर्य है जनता की राय प्राप्त करना। विधानमण्डल जब कोई कानून बनाता है या संविधान में संशोधन करना चाहता है। तब वह उस विषय को जनता के समाने रखकर जनमत प्राप्त करता है एवं उसमें संशोधन करता है। इसी प्रकार जनता का बहुमत प्राप्त होने पर विधानमण्डल का प्रस्ताव कानून का रूप धारण करता है। केन्द्रीय कानूनों पर जनमत संग्रह ऐच्छिक होता है।

3. आरम्भिक–प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की तृतीय विधि आरम्भिक है। आरम्भिक का

आशय है शासन सम्बन्धी मामलों की पहल करने का अधिकार नागरिकों को प्राप्त होना। आरम्भिक उस तरीके को कहा जाता है। जिसके आधार पर मतदाताओं की एक निश्चित संख्या शुरु कर सकती है। यह जनता का अधिकार है जिसके द्वारा एक निश्चित जनसंख्या विधानपरिषद को किसी विषय पर कानून बनाने हेतु मजबूर कर सकती है।

4. प्रत्यावर्तन–इसका अर्थ बदलाव से होता है। किसी विधायिका के सदस्यों को बदलना प्रत्यावर्तन कहलाता है। इसमें जनता अपने द्वारा विधानमण्डल में भेजे गए प्रतिनिधि को वापस बुलाने या पद से हटाने का अधिकार प्राप्त होता है। रूस और चीन में भी प्रत्यावर्तन की व्यवस्था है।

अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र

अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र उस व्यवस्था को कहा जाता है जिस शासन प्रणाली के अन्तर्गत जनता स्वयं सरकार में समाहित न होकर अपने द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों से शासन कराती है। इस लोकतन्त्र व्यवस्था को प्रतिनिधिात्मक लोकतन्त्र भी कहा जाता है।

प्राचीन भारत में लोकतन्त्र

लोकतन्त्र एक अत्यन्त बहुमूल्य शासन व्यवस्था और मुक्त जनजीवन की विधि भी है। इसी तथ्य की प्रस्तुति इस अध्याय मे की गई है। इसका महत्व दलीय प्रथा से और भविष्य के उभरते स्वरूप के बारे में हम कुछ भी न कहे तो ही इतना कहना आवश्यक है। कि उन्नीसवीं और बीसवी सदी में जिस लोकतन्त्र की कल्पना की गई उसका संचालन दलीय व्यवस्था से अभिन्न रूप से सम्बन्धित है।

जब हम अतीत पर दृष्टि पात करते है तो ज्ञात होता है कि इस विचारधारा का जन्म यूरोपीय देशों में 13वीं शताब्दी के उपरान्त हुआ लेकिन मुख्य रूप से सत्रहवीं और अट्ठहारवी शताब्दी में इसका प्रचलन अधिक हुआ। अमेरिका, फ्रांस की क्रान्ति के उपरान्त आधुनिक लोकतन्त्र का स्वरूप हमारे समक्ष आया। अतः यह कहना युक्ति संगत होगा कि जैसे ही यूरोपीय देशों में औधोगिक क्रान्ति का प्रार्दुभाव हुआ अधिकांश देश प्रजातान्त्रिक व्यवस्था को अपनाने लगे और 19वीं शताब्दी में अधिकांश यूरोपीय देशों ने इस व्यवस्था को स्वीकार कर लिया जहाँ तक भारत का प्रश्न है। भारत देश में इसकी जड़े बहुत प्राचीन है। वेदों में इस प्रकार का वर्णन मिलता है कि प्राचीन काल में हमारे देश में राजा का निर्वाचन जनता द्वारा होता था न कि जन्म के आधार पर। राजा के चयन में प्रत्येक युवा भाग लेता था। प्राचीन ग्रन्थों में राजा के लिए 'सम्राट' शब्द का प्रयोग किया जाता था। जिसका अर्थ राजकुल में जन्म लेने के आधार पर नहीं बल्कि जनता की आकांक्षाओं के विरूद्ध कार्य करता था तो जनता उसे हटाने की क्षमता की रखती थी। अतः वेदों में वर्णित शासन प्रणाली आधुनिक लोकतन्त्र के अनुरूप ही थी।''

स्वतन्त्र भारत में लोकतन्त्र

स्वतंत्र भारत की पहली महान उपलब्धि थी एक नए संविधान का निर्माण, एक ऐसा संविधान जो न्याय, स्वतंत्रता, समता तथा बन्धुत्व के मूल सिद्धान्तों पर आधारित था। मानवता के इन उच्चतम आदर्शों को प्रशासनिक नीतियों का रूप प्रदान करना कोई सरल काम नहीं था। उस समय छत्तीस करोड़ की जनसंख्या वाले इस विशाल देश में शासनतंत्र की स्थापना के लिए संविधान सभा को इसकी सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनैतिक समस्याओं से तो जूझना ही था, पर इसके साथ–साथ इस भारी जनसंख्या की मूल जातियों, भाषाओं, धर्मों और विभिन्न सभ्यताओं की जटिलताओं को भी सुलझाना था।

भारत स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 के अनुसार पूर्ण सत्ता के हस्तान्तरण से पहले ही भारत का नया संविधान बनाने के लिए एक संविधान सभा स्थापित की जा चुकी थी। यह कार्य 1946 में कैबिनेट मिशन और प्रमुख राजनीतिक दलों के बीच हुए समझौते के आधार पर किया गया था। यह निर्णय भी किया जा चुका था कि प्रस्तावित संविधान सभा का निर्वाचन परोक्ष रूप से हो ताकि इस को समावेत करने में किसी प्रकार के विलम्ब की सम्भावना न रहे। यही कारण था कि सभा के सदस्यों का निर्वाचन प्रान्तों की निर्वाचित विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा किया गया। कुल मिलाकर 292 स्थान ब्रिटिश भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों के लिए अलग से सुरक्षित कर दिए। इस प्रकार संविधान सभा के सदस्यों की संख्या 385 थी। इसी संस्था को संविधान की संरचना का कार्य सौंपा गया था। जब दिसम्बर 1946 में इसकी पहली बैठक हुई तो संविधान सभा प्रभुसत्ता संपन्न संस्था नहीं थी, क्योंकि अन्तिम अधिकार ब्रिटिश संसद के हाथ में थे परन्तु भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 के कारण स्थिति में महान् परिवर्तन हुआ और यह सभा सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न संस्था बन गई।

विपक्ष की भूमिका

संसदीय लोकतन्त्र की कोई भी कल्पना एकाधिक राजनीतिक दलों के अभाव में अधूरी रह जाएगी। यदि संसद या विधानसभा में एक ही राजनीतिक दल हो और वही दल सरकार को चलाए तो कुछ ही समय से वह सरकार दल हो और वही दल सरकार को चलाए तो कुछ ही समय में वह सरकार पुंग अथवा निष्क्रिय हो जायेगी। क्योंकि यदि वह कोई गलती भी करेगी तो उसकी गलती बताने वाला कोई भी नहीं होगा। इसका एक मात्र विकल्प राजशाही या तानाशाही है। मानव समाज मत–मतान्तरों से ओत–प्रोत रहता है। किसी भी विचारधारा या योजना है। किसी भी विचारधारा या योजना में अच्छे और बुरे, सही और गलत, लागू हो सकने वाले और असंभव, दोनों पहलू होते है और सही दिशा में चलाए रखने या लागू करने के लिए दूसरे पहलू को सदैव ध्यान में रखना आवश्यक है। यही पर विपक्ष की भूमिका का उदय होता है।

विपक्ष का अर्थ

विपक्ष शब्द लैटिन भाषा के 'ऑपोजिशियों' से निकला है। जिसका अर्थ होता है। 'विरोध करना'। उन्नीसवी सदी के दौरान व बीसवी सदी के प्रथम तीन दशकों के विपक्ष ब्रिटिश संविधानिक प्रणाली का एक स्थापित तथा पूर्ण रूप से स्वीकार्य अंग हो चला था। किन्तु इसे विधिवत् मान्यता केवल सन् 1937 में मिली जब ब्रिटिश संसद ने राज्य के मंत्रियों का अधिनियम पास किया और उसमें विपक्ष के नेता को दो हजार पाउण्ड प्रतिवर्ष का वेतन देना स्वीकार किया और यह वेतन राजकोष से देना तय हुआ। विपक्ष के नेता की परिभाषा इस प्रकार थी। ''हिज मैजेस्टी की सरकार के विरोध में जो भी दल हो उसका नेता। यह दल सदस्य संख्या में सबसे बडा हो, यदि इस बात पर संशय हो कि कौन से विपक्षी दल की सदस्य संख्या सर्वाधिक है तो अध्यक्ष का निर्णय मान्य होगा।'' यहाँ यह स्मरणीय है कि कनाडा और आस्ट्रेलिया में इससे पूर्व, अर्थात सन् 1905 व 1920 में विपक्ष को सरकारी तौर पर मान्यता दे दी गयी थी और उसे वहां के संविधानों में एक वैधांनिक रूप दे दिया गया था।'' धीरे–धीरे अन्य देशों में भी विपक्ष को विधिवत मान्यता दे दी गयी। भारतीय लोकसभा में सर्वप्रथम सन् 1969 में विपक्षी दल व उसके नेता को वैधांनिक मान्यता प्रदान की गई।

प्राचीन भारत में महाभारत के शांतिपर्व में राजा के लिए 'सर्वभूतहितरेत' का आदर्श प्रतिपादित किया गया है, और पैतृक रूप में राज्याधिकार प्राप्त राजा भी न तो

लोकमत की उपेक्षा कर सकता था न अपनी मंत्रीपरिषद की। अयोग्य तथा अत्याचारी राजा गद्दी से उत्तार दिये जाने के उदाहरण भी मिलते है। उसी क्रम में राजा या शासन के प्रति विद्रोह करने पर राजद्रोह के अपराध में मृत्यु दण्ड, देश निकाला आदि दंड दिए जाते थे। आज भी असंवैधानिक तरीके से राज्य के विरूद्ध साजिश करने पर मृत्युदण्ड या भारी कारावास की सजा का प्रावधान है। किन्तु दूसरी ओर पिछली दो शताब्दियों में शासन के विपक्ष को न केवल मान्यता प्रदान करना बल्कि उसके नेता को वेतन और भत्ते और अन्य सुविधाएं प्रदान करना हमारी एक बहुचर्चित लोकप्रिय मान्यता को कार्यान्वित करने का प्रमाण है जिससे कहा गया है कि 'निन्दवन नियरे राखिये आंगन कुटी ध्वाया' विपक्ष हमारे सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन की व्यापक सहनशीलता का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

गिलबर्ट कैम्पियन के अनुसार 'विपक्ष' की परिभाषा इस प्रकार है ''विपक्ष तत्समय अल्पमत वाला वह दल है जो एक इकाई के रूप में संगठित हो, जिसे सरकारी मान्यता मिली हो, जिसमें कामकाज चलाने का अनुभव हो, और जो उस समय सरकार बनाने के लिए तैयार हो जब वर्तमान मंत्रिमण्डल ने सदन में अपना विश्वास खो दिया हो। विपक्ष की अपनी एक निश्चित नीति होनी चाहिए और वह केवल सत्ता हथियाने की गरज से विध्वंसक रीति से विरोध करके खेल को बिगाडने का उपक्रम न करें।''

संसदीय विपक्ष का प्रादुर्भाव सत्रहवी सदी में हो गया था, पर उसे एक 'संस्था' या विधिवत् निकाय के रूप में मान्यता बहुत बाद में दी गई। सन् 1826 में ब्रिटेन में संसदीय विपक्ष को 'महामहिम का स्वामिभक्त विपक्ष' नाम दिया गया। सन् 1905 व 1920 में क्रमशः कनाडा तथा आस्ट्रेलिया में विपक्ष को औपचारिक मान्यता दी गई। सन् 1937 ई0 में ब्रिटेन में ''शाही मन्त्रियों का अधिनियम पारित हुआ जिसमें अन्य बातों के साथ–साथ विपक्ष नेता को भी मान्यता व वेतन दिया गया। सन् 1946 में दक्षिण अफ्रीकी संघ में विपक्ष को मान्यता दी गई।

भारत में विपक्ष

भारतीय विपक्ष को पहली बार लोकसभा में सन् 1969 में मान्यता दी गई जबकि नवम्बर 1969 में सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी में हुए विभाजन के परिणामस्वरूप कांग्रेस (संगठन) नामक एक ओर पार्टी गठित हुई और उस पार्टी को विपक्ष दल के रूप में और उसके नेता को विपक्षी नेता के रूप में मान्यता दी गयी। इससे पहले स्वतन्त्र भारत में सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश विधान सभा में विपक्षी दल को मंत्रिमंडलीय स्तर के मंत्री की तरह वेतनमान तथा सुविधाएं दी गई। विपक्ष के नेता मंत्रिमंडलीय स्तर के मंत्री का दर्जा मध्य प्रदेश में 1972 में व बिहार में 1973 में प्रदान किया गया। लोकसभा में यद्यपि विपक्ष को मान्यता 1969 में दे दी गई थी। किन्तु उसके नेता को वेतन व अन्य सुविधाएं 1977 के एक अधिनियम के मार्फत दी गई।

किसी भी राष्ट्र में सत्ता और जनता के बीच विशिष्ट साझेदारी और सहयोग की रेखा लोकतन्त्र की स्थापना का आधार होती है। ''सत्ता अपनी सुस्थिरता चाहती है और जनता सत्ता से सुशासन की आकांक्षा करती है। सुशासन के बिना राजसत्ता की सुस्थिरता सम्भव नही हो पाती है।'' शासन की सुस्थिरता न अकारण होती है और न स्वतः। कभी–कभी उनका क्रियान्वयन और कभी–कभी ये दोंनो ही अस्थिरता के कारण बन जाते है। भारतीय राजनीति के पिछले दो दशक इसी दलदली दिशा के दिशाहीन दशक है। राजेन्द्रपुरी के शब्दों में ''जब देश के शासक राजनैतिक श्रेष्ठता के मार्ग पर चलने लगे, तब जनता एक मूक दर्शक नहीं रहती। वह दूसरे हजारों रास्ते सीखती है।''

नेहरू जी ने जिस लोकतन्त्र को अपनी सम्पूर्ण निष्ठा ज्ञान और अनुभव से अंभिसंचित करने का प्रयास किया था ऊपरी तौर पर उसमें बडी कमजोरियाँ नहीं दिखाई दे रही थी लेकिन आर्थिक नीतियों ने गाँधी के आर्थिकदर्शन को बदला जिसके परिणाम स्वरूप देखते–देखते निर्धन भारतीय लोकतन्त्र में एक भोग विलासी संस्कृति का जन्म हुआ। सादगी के आचरण नेताओं को प्रिय लगने बन्द हो गए। लूट–खसौट, बेईमानी भ्रष्टाचार से जुडे हुए राजनेताओं और मुख्यमंत्रियों के प्ररकण दिखने लगे।'' भारतीय राजनीति आकृष्ट भ्रष्टाचार में डूबी राजनीति है।''

विगत वर्षों का इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि भारत में संसदीय संस्थाएं क्रियाशील हैं, किन्तु उनके अंग के रूप में विरोधी दल की व्यतिपय महत्वपूर्ण विशेषताएं उभरी हैं जो निम्नलिखित है–

- भारतीय लोकसभा में मान्य विपक्षी दल का अभाव रहा है किसी भी दल को पर्याप्त संख्या यानि 54 सदस्य अर्थात् सदन की कुल संख्या का 10वां भाग नहीं प्राप्त हो सका था कि उसे अधिकारिक मान्यता प्राप्त हो, चतुर्थ लोकसभा में संगठन कांग्रेस को ही कुछ समय तक मान्य विपक्षी दल माना गया था पांचवी लोकसभा में मान्यता प्राप्त विपक्षी दल नहीं था छठी लोकसभा में प्रारम्भ में कांग्रेस और जनता पार्टी ने मान्यता प्राप्त विपक्षी दल के रूप में कार्य किया। श्री यशवन्त चहाण, सी०एम० स्टीफन तथा जगजीवन राम को क्रमशः विपक्षी दल के नेता कां मान्यता दी गयी थी। इसी समय सातवी लोकसभा में किसी भी दल को विपक्षी दल की मान्यता का दर्जा प्राप्त नहीं है।
- भारत में विपक्षी दल अनुत्तरदायी भी हैं। सत्ता प्राप्त करने के लिए विपक्षी दलों में लोकतन्त्र की रक्षा के नाम पर आपस में गठबंधन करके देश में अराजकता फैलाने में संकोच भी नही किया और संसद में राजनीतिक दलों में मूलभूत सिद्धान्तों पर एकता नहीं पायी जाती। भारतीय संसद में प्रतिपक्षी का प्रभाव क्षीण है प्रतिपक्ष उतना मुखर जागरूक, आत्मनिष्ठ और प्रमुख नही है जितना तीसरी और चौथी लोकसभा में था। आज संसद केवल सीमित सतर्कता की साधन रह गयी है अब संसद का स्वर पहले जैसा प्रबल नहीं रहा है और वह सरकारों को पहले की भांति अनुशासित रखने में असमर्थ है।
- भारत में विपक्ष को अपनी भूमिका बदलनी होगी। उसे जनता को शिक्षित करना तथा उन्हें इस विश्वास में लेना होगा कि विपक्ष सत्तारूढ़ दल की तुलना में जनता की सेवा अच्छे ढंग से कर सकता है। विपक्ष द्वारा की जाने वाली सत्ता दल की आलोचना ऐसी होनी चाहिए कि यदि उसे सरकार चलानी पड़े तो उनकी अपनी नीति ही उनके कार्यकलापों से खण्डित न होती हो। सत्तारूढ़ दल को भी विपक्ष के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलना होगा। अतः सत्तारूढ़ दल को विपक्ष से राष्ट्रीय मामलों पर परामर्श करना चाहिए तथा विपक्ष की बातों को ध्यान से सुनना चाहिए ताकि संघर्ष की राजनीति के स्थान पर सहयोग की राजनीति की शुरूआत हो सके।

अनुसंधान प्रश्न तथा शोध परिकल्पनाएँ

प्रस्तुत अध्ययन भारतीय राजनीति में केन्द्रीय गठबंधन में विपक्ष की भूमिका के आधार पर तैयार किया जायेगा, इससे इस बात का पता चलेगा कि केन्द्रीय स्तर पर राजनीति में विपक्ष दलों की क्या स्थिति थी? केन्द्रीय गठबंधन सरकार को किस तरह

प्रभावित करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में इस बात को भी लिया जायेगा कि कोई भी दल लोकसभा में बहुमत प्राप्त करने में सक्षम नहीं है जिससे केन्द्र में गठबंधन सरकार का निर्माण होता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुये निम्न प्रश्नों का समाधान खोजने का प्रयास किया जायेगा।

- क्या विपक्षी दलों में आन्तरिक गुटबंदी प्रमुख समस्या है ?
- क्या नये दलों के गठन से विपक्षी दल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है?
- क्या विपक्षी दलों का नेतृत्व विपक्षी दलों में अधिक पायी जाती है?
- क्या अनुशासन के अभाव के कारण विपक्ष दल की स्थिति कमजोर होती है?
- क्या विपक्षी दलों में बिखराव एवं राजनीतिक मुद्दों का अभाव पाया जाता है ?

परिकल्पनायें

प्रस्तुत अध्ययन भारतीय व्यवस्था में केन्द्रीय गठबंधन सरकार से विपक्ष की भूमिका की व्याख्या करते हैं तथा वह जानने की चेष्टा करता है कि वे कौन से कारक है जो भारतीय राजनीति में केन्द्रीय गठबन्धन सरकार में विपक्ष की क्या भूमिका है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुये कुछ परिकल्पनाओं का निर्माण किया जायेगा–

- विपक्ष दल सत्तारूढ़ दल की कमियों पर कड़ी नजर रखते हैं एवं जनता के सामने प्रकट करते हैं।
- विपक्ष बल सरकार की नीतियों, कार्यों और गलतियों पर अंकुश लगाते हैं।
- विपक्षी दल जनता की शिकायतों और समस्याओं को संसद में पहुंचाते हैं तथा उसके समाधान के लिये सरकार पर दबाव बनाते हैं।
- विपक्षी दल द्वारा सरकार की निरकुंशता भ्रष्टाचार तथा सत्ता के दुरुपयोग पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है।
- विरोधी दल द्वारा उन नीतियों और कार्यक्रमों को रोकने का प्रयोग किया जाता है जिसे वह देश के अहित में समझते है।
- सत्तारूढ़ दल के विरूद्ध जनमत तैयार करना तथा राजनीतिक चेतना को जाग्रत करते हैं।
- विपक्षी दलों द्वारा सत्तारूढ़ दल का विरोधी कर संसद में अविश्वास प्रस्ताव लाया जाना तथा आरोप लगाये जाते हैं।

तथ्यों का एकत्रीकरण

प्रस्तुत अध्ययन हेतु दो प्रकार के स्रोत से तथ्यों का संकलन किया जायेगा। प्राथमिक स्रोत एवं द्वितीयक स्रोत। प्राथमिक स्रोतों से तथ्य एकत्र करने के लिये साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया जायेगा। साक्षात्कार विधि को विषय केन्द्रित एवं प्रभावशील बनाने के लिये एक प्रश्नावली का निर्माण किया जायेगा। साक्षात्कार विधि को विषय केन्द्रित एवं प्रभावशाली बनाने के लिये ही प्रश्नावली का निर्माण किया जायेगा।

द्वितीय स्रोत से पाठय–पुस्तक, समाचार स्रोतों एवं पत्रिकाओं को लिया जायेगा। जिसमें विपक्ष की राजनीति के कारणों को जानने का प्रयास किया जायेगा।

निष्कर्ष–

संसदीय प्रजातन्त्र के विकास के लिये सत्तापक्ष के साथ ही एक सशक्त, सुदृढ़ विपक्षी दल का होना अत्यन्त आवश्यक है। सुदृढ़ विरोधी पक्ष के अभाव में संसदीय प्रजातन्त्र बिखर जाताहै। संसदीय प्रजातन्त्र में शक्तिशाली विपक्ष की आवश्यकता सरकार

की नीतियों की आलोचना तथा विकल्प प्रस्तुत करने के लिये अनिवार्य होती है। सामान्यतः लोकतन्त्र में विपक्ष की भूमिका रचनात्मक होती है। यद्यपि विपक्ष सरकार के उन सभी कार्यों को जहां समर्थन की जरूरत है समर्थदे और जहां विरोध होना चाहिये विरोध करे। लेकिन भारत में विपक्ष अपनी भूमिका ठीक प्रकार से नहीं निभा रहा है। भारत के संसदीय लोकतंत्र में सबसे बड़ी समस्या इस बात की है कि यहां सशक्त विपक्ष का अभाव है। अभी भी हमारे देश की दलीय व्यवस्था सिद्धान्तों के आधार पर नहीं वरन् व्यक्ति विशेष पर आधारित है दल का विभाजन या गठबंधन सिद्धान्तों के आधार पर नहीं बल्कि राजनीति हितों के लिये किया जाता है। लोकतंत्र में विपक्ष का मुख्य कार्य लोकतंत्र की रक्षा होनी चाहिये लेकिन भारतीय विपक्ष की भूमिका निराशजनक रही है। वैसे कभी–कभी भारतीय विपक्ष अपनी सजगता क अनुभव करता रहा है। कई बार विपक्ष की सजगता के कारण ही स्थिति संभल सकी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

- जी० पी० नेमा, राजनीतिक समाज शास्त्र, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2005 नई दिल्ली पृ० 338।
- कोठारी, रजनी, कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स, नई दिल्ली ओरियेन्ट लोगमैन लि0, 1685
- कौशिक, पीताम्बर दास, ''उत्तर प्रदेश विधानसभा में मिड टर्म इलैक्शन आव मई 1980 एण्ड इम्पैक्स'' पालिटिकल सांईस रिव्यू, 1989
- मिश्रा के0 पी0, फैकशनेलिज्म इन यू0पी0 कांग्रेस में इकबाल नारायण स्टेट पालिटिक्स इण्डिया, मेरठ मीनाझी 1981।
- आर० जी० गैटलः पालिटिकल साइन्स, दि वर्ल्ड प्रेस प्रा० लि० कलकत्ता 1950, पृ0 1992
- 15. जी० पी० नेमा, राजनीतिक समाज शास्त्र, यूनिवर्सिट पब्लिकेशन नई दिल्ली 2007, पृ० 340–341।
- साप्ताहिक हिन्दूस्तान, 16 फरवरी 2011 विशेषांक।
- डॉ० सुभाष कश्यप, हमारी संसद, राधा पब्लिकेशन, 2015, पृ० 1।
- जेः हार्वे एण्ड एल० बेदर– द ब्रिटिश कांस्टीटूयशन लदन 1965 पृ० 150–151।
- रेणु सक्सेना, 'द रोल ऑफ ओंपोजीशन इन इण्डिया पोलिटिक्स, अनमोल पब्लिकेशन दिल्ली, 1986, पृ० 2।
- सुशील चन्द्र सिंह, संसदीय सरकार में विरोधी दल का स्थान, लोकतंत्र समीक्षा, अप्रैल 2005 पृ०–29